प्रकाशन संख्या 258

शिक्षा में नव चिन्तन

NIEPA DC

D04857

मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग
(राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान)
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उ०प्र०
लखनऊ
१९८७

मुद्रक : आर्यन प्रिंटिंग प्रेस, १११७ कटरा, इलाहाबाद

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Aministration
17-B, Sri Aurbindo Marg, New Delhi-110016
DOC. No. D-4857
Date 21-9-87

प्राक्कथन

समस्त प्राणियों में मानव की श्रेष्ठता का प्रमुख कारण उसकी चिन्तन शक्ति है। चिन्तन के द्वारा ही अतीत के क्रियाकलापों का तथा भविष्य की रीति-नीति का निर्धारण किया जाता है। प्रगति-पथ पर निरन्तर बढ़ते रहना मानव-धर्म है और इस साधना का प्रमुख साधन चिन्तन है। निश्चय ही, 'शिक्षा में नव चिन्तन' के माध्यम से राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान ने उक्त मान्यता को बल प्रदान करने का उल्लेखनीय प्रयास किया है।

प्रस्तुत प्रकाशन के अन्तर्गत शिक्षा जगत की आसन्न और विश्व-समाज द्वारा प्रस्तुत कतिपय अद्यतन विचारों का तथा भारतीय परिवेश में, उनकी सार्थकता की जाँच का सराहनीय प्रयास किया गया है। आशा है 'शिक्षा में नव चिन्तन' शिक्षकों, शिक्षार्थियों, अभिभावकों तथा प्रशासकों को उनके दायित्व-बोध एवं निर्वाह में सहायक होगा।

प्रकाशन के लिए संस्थान के प्राचार्य एवं उनके सहयोगी बधाई के पात्र हैं जिनके परिश्रम एवं सहयोग से यह कार्य सम्भव हो सका है।

डा० लक्ष्मी प्रसाद पाण्डेय
निदेशक,
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, उत्तर प्रदेश,
लखनऊ।

आमुख

शिक्षा जगत की समस्याओं का सजग चिन्तन इस संस्थान की पुरानी परम्परा है। इस आशय एवं लक्ष्य की पूर्ति हेतु संस्थान विविध मंचों एवं साधनों का प्रयोग करता आ रहा है। प्रकाशन उनमें से एक है।

समस्या की पहचान, अनुशीलन और निष्कर्ष निरूपण संस्थान की क्षमता और कार्य कुशलता की अपेक्षा रखता है, परन्तु अन्तिम चरण प्रसार शासकीय सहयोग एवं प्रोत्साहन के अभाव में सम्भव नहीं है। प्रस्तुत प्रकाशन राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के वर्तमान निदेशक, डा० एल० पी० पाण्डेय की प्रेरणा एवं सहयोग का फल है।

इस प्रकाशन में कुल सात लेख हैं। उनके लेखकों का मैं आभारी हूँ। संस्थान के वरिष्ठ शोध अधिकारी श्री राजपति तिवारी, उप-प्रचार्य डा० एस०एन०पी० जायसवाल तथा प्रवक्ता (इतिहास) श्री गुरु प्रसाद त्रिपाठी का इस कार्य में विशेष योगदान रहा। ये सभी बधाई के पात्र हैं।

प्रयाग दत्त दीक्षित
प्राचार्य
राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान,
इलाहाबाद।

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
1— उपचारात्मक शिक्षा	श्री प्रेमनाथ तिवारी	7
2— शैक्षिक उद्देश्यों की समीक्षा	श्री बेणी माधव गुप्त	11
3 – प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम	श्री श्याम नारायण राय	19
4— वैयक्तीकृत शिक्षण (पर्सनलाइज्ड इन्स्ट्रक्शन)	श्री गुरु प्रसाद त्रिपाठी	23
5— पाठ्यक्रम में नवाचार	श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी	28
6— अधिगम प्रवीणता	श्री हरीश प्रसाद श्रीवास्तव	31
7— कक्षा-शिक्षण में टीचिंग माडल एप्रोच	श्री राजवंशी प्रसाद पाण्डेय	37

उपचारात्मक शिक्षा

उपचारात्मक शिक्षा, शिक्षा का एक नया आयाम है। उपचारात्मक शिक्षा का नाम लेते ही जन-मानस में प्रश्नों का एक बड़ा सा अम्बार उठ खड़ा होता है कि उपचारात्मक शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, क्षेत्र क्या है, यह शिक्षा किसके लिए है, यह शिक्षा सामान्य शिक्षा से किन अर्थों में भिन्न है, सामान्य शिक्षा से किस प्रकार सम्बद्ध है, आदि। इन प्रश्नों का उत्तर जाने, इसके पूर्व शिक्षा का अर्थ जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

शिक्षा, अंग्रेजी शब्द 'एजूकेशन' का हिन्दी रूपान्तर है। एजूकेशन 'एडूकेयर' से बना है जिसका अर्थ "अन्दर से बाहर निकालना" अर्थात् शिक्षा का अर्थ बालक की अन्तर्निहित क्षमताओं को बहिर्गत करना है। इससे स्पष्ट होता है कि आज का बालक, कल का होने वाला मानव है। वह भावी मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की विभिन्न क्षमताओं को किसी न किसी रूप में उसी भाँति अपने में समाहित किए हुए रहता है, जिस प्रकार विशाल वट वृक्ष का वह बीज जो समुचित पर्यावरण का लाभ लेकर अपने को पूर्ण विकसित कर लेता है। आज शिक्षा बाल केन्द्रित मानी जाती है। शिक्षा जगत में बालक का महत्व सर्वोपरि है। शिक्षक का कार्य बालक को कुछ देना नहीं अपितु उसमें जो कुछ है उसे बहिर्गत करने के लिए उचित परिवेश की व्यवस्था करनी है ताकि जो कुछ उसे कल बनना है, वह बन जाय। शिक्षा का सीमित अर्थ जहाँ ज्ञानात्मक अर्थात् समाज की सांस्कृतिक विरासत को एक पीढ़ी का हस्तान्तरण करने की प्रक्रिया से है वहाँ व्यापक अर्थों में शिक्षा आजन्म चलने वाली प्रक्रिया मानी जाती है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति शैक्षिक अनुभव प्राप्त कर अपने दैनिक व्यवहार में परिवर्तन करता है।

लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था में शिक्षा किसी वर्ग विशेष एवं जाति की न होकर जन-जन का प्रातव्य है। जनसंख्या विस्फोट एवं अनिवार्य शिक्षा के कारण भारतीय विद्यालयों के कक्षा-कक्षों में अपार भीड़ बढ़ती जा रही है। फलस्वरूप आज के बालक जो कल के भावी विकसित मानव बनने वाले हैं, पर शिक्षक व्यक्तिगत ध्यान केन्द्रित नहीं कर पा रहा है, सामान्य शिक्षण कर पाने में विशेष कठिनाइयों का अनुभव कर रहा है। बालक को जानकर उसमें निहित सामर्थ्य के प्रस्फुटन हेतु अनुकूल परिवेश देकर वांछित व्यक्तित्व विकास कर पाने में अपने को पूर्णतः असफल पा रहा है। फलतः कक्षा में शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए एवं अल्पार्जी छात्रों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि परिलक्षित

हो रही है। इन छात्रों में निराशा एवं हीन भावना का अंकुरण स्वाभाविक ही है। निराशा एवं हीन भावना से असंतुष्टि एवं कुसमायोजित व्यक्तित्व का निर्माण होता है। समाज में में ऐसे छात्रों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। आज की शिक्षा व्यवस्था बालक के हितों की रक्षा करने में असफल होती जा रही है। अतः आज कक्षा में निरन्तर बढ़ रही असफल छात्र की संख्या को देखते हुए तथा उनमें बढ़ती निराशा एवं व्युत्पन्न हीन भावना के कारण कुसमायोजित व्यक्तित्व वाले छात्र के शैक्षिक अवरोधों एवं कठिनाइयों के निदान एवं निराकरण तथा उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षण विधि को अपना कर उन्हें सामान्य प्रगति पथ लाने के लिए तथा क्षमतानुकूल उन्हें विकसित करने के लिए वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के साथ जो उपयोगी व्यवस्था लागू की जा सकती है, वह उपचारात्मक शिक्षा व्यवस्था ही हो सकती है।

"उपचार" अंग्रेजी शब्द "रेमिडी" (Remedy) का हिन्दी रूपान्तर है। प्रायः छात्र में कुछ शैक्षिक दोष शिक्षण अथवा अधिगम की त्रुटिपूर्ण प्रक्रियाओं के कारण उत्पन्न हो जाते हैं। इन दोषों की उपस्थिति से छात्र अपनी सहज शैक्षिक प्रगति नहीं कर पाता है। इन दोषों के निदान तथा निराकरण को उपचार की संज्ञा दी गई है शैक्षिक अवरोधों का उपचार करने वाली शिक्षण व्यवस्था जिसके अन्तर्गत छात्र की शैक्षिक कमियों एवं दोषों का निदान तथा निराकरण सम्मिलित रहता है। उपचारात्मक शिक्षण के संकुचित अर्थ को अभिव्यक्त करता है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि उपचारात्मक शिक्षण का अर्थ केवल शैक्षिक अवरोधों का निदान एवं उनका निराकरण करना मात्र त्रुटि निवारण तक ही सीमित नहीं है अपितु जो छात्र अपनी वांछित क्षमतानुकूल शैक्षिक प्रगति न करके पिछड़ जाते हैं जब वे सामान्य छात्र के समकक्ष या उससे भी अधिक बौद्धिक क्षमता रखते हैं, के संवर्द्धित क्षमता के विकास करने तक विस्तृत हो जाता है। उपचारात्मक शिक्षण के व्यापक अर्थ में छात्र के शैक्षिक त्रुटि निवारण एवं संवर्द्धित क्षमता का विकास निहित रहता है। उपचारात्मक शिक्षण एक प्रकार के उच्चकोटि की विकासोन्मुख शिक्षा प्रक्रिया है, जिसमें बालक की विशेषताओं एवं आवश्यकताओं को महत्व दिया जाता है तथा इस शिक्षण व्यवस्था से छात्र की शैक्षिक उपलब्धि में अपेक्षित वृद्धि की जाती है। इस विचार की पुष्टि ब्लेअर के कथन से भी होती है।

उपचारात्मक शिक्षण एक अच्छा शिक्षण है जिसमें बालक एवं उसकी आवश्यकताएँ केन्द्र बिन्दु पर होती हैं—ब्लेअर।

उपचारात्मक शिक्षा व्यवस्था में उपचारात्मक शिक्षण के दो पक्ष उभर कर सामने आते हैं। पहला त्रुटि निवारण, जिसके अन्तर्गत दोषपूर्ण आदतों तथा अस्वस्थ

अभिवृत्तियों का निराकरण तथा त्रुटिपूर्ण ढंग से अर्जित कौशलों का पुनः शिक्षण सम्मिलित रहता है। दूसरा संवर्द्धित क्षमता विकास जिसमें उन आदतों, अभिवृत्तियों एवं कौशलों का प्राथमिक शिक्षण निहित है जिन्हें छात्र ने कभी ग्रहण नहीं किया, परन्तु उन्हें उसकी आवश्यकता रहती है। इस शिक्षण का सम्बन्ध दो प्रकार की कमियों—दोषपूर्ण आदतों की उपस्थिति तथा अच्छी आदतों की अनुपस्थिति से है। अतः उपचारात्मक शिक्षण अनिवार्यतः एक उत्तम शिक्षण है जो बालक के स्वयं के स्तर से प्रारम्भ करके उसे निरन्तर अभिप्रेरित करता हुआ उसके वांछित क्षमतानुकूल शैक्षिक स्तर तक पहुँचा देता है। इस व्यवस्था में बालक की रुचि एवं उसकी आवश्यकताएँ महत्वपूर्ण हैं।

उपचारात्मक शिक्षण के अन्तर्गत मन्दगामी एवं अल्पार्जी छात्रों को सम्मानित किया जाता है। मन्दगामी छात्र वे छात्र होते हैं जिनका मानसिक या बौद्धिक स्तर छात्रों से न्यून होता है तथा उसके सीखने की गति धीमी होती है। अल्पार्जी की श्रेणी में वे छात्र सम्मिलित रहते हैं जिनकी शैक्षिक प्रगति वांछित क्षमता से कम होती है परन्तु इनका बौद्धिक स्तर औसत या औसत से ऊपर रहता है। शैक्षिक दृष्टि से छात्रों के पिछड़ने का कारण उनका परिवेश या व्यक्तित्व या दोनों ही घटक हो सकते हैं।

उपचारात्मक शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य—मन्दगामी एवं अल्पार्जी छात्रों का पता लगाना, इनके शैक्षिक दुर्बलताओं का पता लगाना, शैक्षिक अवरोधों के कारणों को ज्ञात करना एवं उनका निराकरण करना, बुनियादी त्रुटियों का सुधार करना, छात्रों को अभिप्रेरित करना, संवर्द्धित क्षमता का विकास करना, दोषपूर्ण ढंग से अर्जित कौशलों का पुनर्शिक्षण एवं उन आदतों, अभिवृत्तियों एवं कौशलों का प्राथमिक शिक्षण जिन्हें छात्र ने पहले कभी नहीं जाना परन्तु उनकी उन्हें आवश्यकता रहती है।

क्रोनेल ने उपचारात्मक शिक्षण के जिन प्रमुख सिद्धांतों का उल्लेख अपनी पुस्तक "टैकवर्ड इन बेसिक सब्जेक्ट्स" में किया है, वे हैं—

(1) व्यक्तिगत (2) अध्यापक का छात्रों के प्रति उचित दृष्टिकोण
(3) छात्रों की रुचि से संबंधित शिक्षण सामग्री का उपभोग
(4) छात्र को कठिनाइयों के संदर्भ में संबंधित उपयुक्त विधि का चयन तथा
(5) छोटे एवं क्रमानुकूल पाठ।

आज की भीड़-भाड़ युक्त विद्यालयों में उपचारात्मक शिक्षण के उपयोग एवं महत्व पर प्रकाश डालने की दृष्टि से राजकीय इण्टर कालेज, इलाहाबाद में वर्ष 1973–74, से 1976–77 तक किए गए उपचारात्मक शिक्षक संबंधी प्रयोग का ब्योरा प्रस्तुत कर देना प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण होगा। कक्षा 9 और 11 गृह परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण छात्रों को

विशेष रूप से कक्षोन्नति प्रदान की गई। इन छात्र की ग्रीष्मकालीन उपचारी शिक्षण प्रदान किया गया। अन्त में इन्हें हाई स्कूल एवं इण्टर की सार्वजनिक परीक्षाओं में बैठने का अवसर दिया गया। देखा गया कि हाई स्कूल में सम्मिलित ऐसे 253 छात्रों में से 100 (लगभग 40 प्रतिशत) तथा इण्टर में 133 में 67 (लगभग 43 प्रतिशत) छात्र उत्तीर्ण हुए और इनके बहुमूल्य एक वर्ष का अपव्यय नही हुआ। इन छात्र के लिए उपचारी शिक्षण व्यवस्था लाभप्रद रही। इस उपलब्धि को शब्दों में न तो अभिव्यक्त किया जा सकता है और नहीं संख्यात्मक रूप से इसका वास्तविक मूल्यांकन ही किया जा सकता है।

प्रायः विद्यालयों में विषयगत दुर्बलताओं एवं कमजोरियों को आधार मानकर छात्र को अनुत्तीर्ण कर दिया जाता है। किसी छात्र को अनुत्तीर्ण घोषित कर देने से उसकी समस्या का निदान नहीं हो जाता है। रोगी को औषधि देकर रोगमुक्त करना उत्तम है, बिना औषधि दिये उसके शरीर को क्षति पहुँचाना उचित नहीं है। उचित निदानोपरान्त उपचार करना ही समस्या का उचित समाधान कहा जा सकता है। अतः आज की विद्यालयीय व्यवस्था में उपचारी छात्र की कठिनाइयों का निदान करके उपचारी शिक्षण की व्यवस्था से उन्हें निस्संदेह विकासोन्मुख किया जा सकता है। उपचारात्मक शिक्षण आज हमारी आवश्यकता है।

शैक्षिक उद्देश्यों की स्तरीयता

जो भी कार्य हम करते हैं उसकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। उद्देश्य वह विन्दु तथा अभीष्ट है जिसकी दिशा में कार्य किया जाता है या उद्देश्य वह व्यवस्थित परिवर्तन है जिसे क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है या जिसके लिए हम क्रिया करते हैं।

2—शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत उद्देश्य, पाठ्यक्रम अधिगम–अनुभव तथा मूल्यांकन आदि समाहित किया जाता है। ये परस्पर सम्बद्ध हैं तथा एक दूसरे पर आश्रित हैं। इनमें शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण सबसे महत्वपूर्ण पद है। इस संबंध में शिकागो के के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री बी० एस० ब्लूम का योगदान महत्वपूर्ण है।

3—शिक्षा के अन्तर्गत उद्देश्यों को प्रमुख रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

(5) शैक्षिक उद्देश्य।
(2) शिक्षण उद्देश्य।

शैक्षिक उद्देश्य की प्रकृति दार्शनिक हैं। इनका स्वरूप अधिक व्यापक होता है। इनकी सम्प्राप्ति की अवधि लम्बी होती है तथा यह सभी विद्यालयीय विषयों का उत्पाद होता है। ये पाठ्यक्रम की रचना, अनुदेशन के लिए निर्देश तथा मूल्यांकन की प्रविधियों के विशिष्टीकरण में सहायक होते हैं। ये शिक्षा तथा विद्यालयों के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। शैक्षिक उद्देश्यों की उपलब्धि क्षेत्र के शैक्षिक जीवन अर्थात प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर की व्यवस्था द्वारा की जाती है। शैक्षिक उद्देश्यों की सहायता से की जाती है। इन्हें सामान्य उद्देश्य कहा जाता है। श्री बी० एस० ब्लूम के शब्दों में शैक्षिक उद्देश्य का अर्थ निम्नलिखित है :—

Educational objectives are not only the goal towards which the curriculum is shaped and towards which instruction is guided but they are also the goals that provide the detailed specification for tne construction and use of evaluative technique.

4—शिक्षण उद्देश्यों की प्रकृति मनोवैज्ञानिक है। वास्तव में ये अधिगम उद्देश्य है। इनकी सम्प्राप्ति की योजना एक कालांश में करने की होती है। इनका महत्व शिक्षण की

युक्तियों तथा शिक्षण ब्यूह (Teaching strategios) की रचना में है। इनका प्रत्यक्ष संबंध कक्षा शिक्षण से तथा सीखने की प्रकिया को सरल बनाने से है। इनकी सहायता से ही शैक्षिक उद्देश्य की सम्प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ—यदि शैक्षिक उद्देश्य "राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास हैं तो इस शैक्षिक उद्देश्य की सम्प्राप्ति के लिए कई शिक्षण उद्देश्य हो सकते हैं जैसे राष्ट्रीय एकता की संकल्पना का प्रत्याहवान करना; राष्ट्रीय एकता के अर्थ की व्यवस्था करना आदि। इन्हें विशिष्ट उद्देश्य की भी संज्ञा दी जाती है। इनका संबंध छात्रों के इच्छित परिवर्तन से होता हैं। अर्थात् शिक्षण उद्देश्यों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से अधिगम उद्देश्यों से होता है। बी० एस० ब्लूम ने इसे तीन भागों में स्तरीकृत किया है। वह निम्नलिखित है :—

(1) संज्ञात्मक उद्देश्य (Cognative Domain)

(2) भावात्मक उद्देश्य (Affective Domain)

(3) क्रियात्मक या मनोगत्यात्मक उद्देश्य) (Psychomotor Domain)

5—संज्ञात्मक पक्ष के अन्तर्गत ज्ञान, बोध अनुप्रयोग, कौशल, विश्लेषण, संश्लेषण तथा मूल्यांकन स्तर है। इस क्षेत्र में सोचने, जानने एवं समस्या निवारण सम्बन्धित उद्देश्य हैं।

भावात्मक पक्ष में अभिवृत्ति, अभिरुचि, अनुभूति, मूल्यों तथा प्रशंसा से संबंधित उद्देश्य हैं। आग्रहण, अनुक्रिया, अनुमूल्यन, संगठन चरित्र निर्माण आदि प्रमुख वर्ग हैं।

क्रियात्मक पक्ष में शारीरिक क्रियाओं तथा कौशलों के विकास से संबंधित उद्देश्य हैं।

6—अधिगम के उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखना बहुत महत्वपूर्ण है। इससे अधिगम की क्रियायें स्पष्ट हो जाती है। शिक्षण क्रियाएँ सीमित तथा सुनिश्चित हो जाती है, अधिगम के अनुभवों की विशेषताओं को निर्धारित तथा मापन किया जा सकता है। शिक्षण व्यूह की रचना के चयन में सुगमता हो जाती है। शिक्षण उद्देश्वों को व्यावहारिक रूप में लिखाने का प्रयास कई लोगों द्वारा किया गया है। इस संबंध में ब्लूम, राबर्ट मेगर, राबर्ट मिलर ई० जे० सिमसन तथा एन० सी० ई० आर० टी० पद्धति उल्लेखनीय है।

7—निम्नलिखित सारणियों में प्रत्येक उद्देश्य का वर्गीकरण प्रत्येक वर्ग के विशिष्ट छात्र के उपेक्षित व्यवहार के रूप में स्पष्ट किया गया है :—

संज्ञात्मक पक्ष—

वर्ग	विनिदेश तथा छात्र के अपेक्षित व्यवहार
ज्ञान (Knowledge)	छात्र को शब्दों, संकल्पनाओं, प्रतीकों, परिभाषाओं, सिद्धान्तों क्रिया विधियों, नियमों आदि का ज्ञान है। अपेक्षित व्यवहार— (1) प्रत्याह्वान करता हैं। (2) पहचान करता है।
बोध (Comprehension)	छात्र शब्दों, संप्रत्ययों, प्रतीकों, सिद्धान्तों क्रिया विधियों को समझता हैं। अपेक्षित व्यवहार— (1) उदाहरण प्रस्तुत करता है। (2) अनुवाद करता है। (3) वर्गीकरण करता है। (4) अशुद्धता को पकड़ लेता हैं उन्हें शुद्ध करता है। (5) तुलना करता है। (6) सामान्यीकरण करता है। (7) अन्तर बताता है। (8) अनुमान लगाता है। (9) कथनों की व्याख्या करता है। आदि
अनुप्रयोग (Application)	छात्र ज्ञान और बोध का अपरिचित परिस्थिति या नवीन समस्याओं के समाधान में प्रयोग करता है। अपेक्षित व्यवहार— (1) चयन करता है। (2) पर्याप्तता. बहुतायत या अनावश्यकता या उपयुक्तता को ज्ञात कर लेता है।

(3) सम्बन्ध स्थापित करता है।

(4) विकल्पों को प्रस्तावित करता है।

(5) निष्कर्ष निकालता है।

विश्लेषण (Analysis) छात्र तत्व, संबंध तथा व्यवस्थित सिद्धान्तों आदि का विश्लेषण करता है। अपेक्षित व्यवहार—

(1) विभेद करता है

(2) उदाहरण देता है

(3) पृथक करता है

(4) आलोचना करता है।

संश्लेषण (Synthesis) छात्र अद्‌भुत सम्प्रेषण योजना बताता है तथा अमूर्त संबंध खोज निकालता है।

अपेक्षित व्यवहार—

(1) पुनर्व्यवस्थित करता है।

(2) सारांश देता है।

(3) सृजन करता है।

(4) संकलित करता है।

(5) संगठित करता है।

(6) वर्णन करता है।

मूल्यांकन (Evaluation) छात्र आंतरिक साक्ष्यों तथा वाह्य साक्ष्यों द्वारा निर्णय लेता है।

इन सब का स्तरीकरण (Hierarchical form) में है।

8—भावात्मक पक्ष :

वर्ग	विनिदेश-छात्र के अपेक्षित व्यवहार
आग्रहण (Receiving)	छात्र क्रिया में जागरुक होता है, क्रिया प्राप्ति की इच्छा करता है तथा नियंत्रित योजना तैयार करता है। अपेक्षित व्यवहार : (1) स्वीकार करता है। (2) प्रत्यक्षीकरण करता है। (3) चयन तथा पसन्द करता है। (4) सूचना देता हैं।
अनुक्रिया (Responding)	छात्र अनुक्रिया में सहमति देता है, अनुक्रियाओं की इच्छा करता है तथा अनुक्रियाओं में संतोष करता है। अपेक्षित व्यवहार : (1) कथन करता है। (2) आलेख लिखाता है। (3) सूची बनाता है। (4) सूचित करता है। (5) संकलन करता हैं।
अनुमूल्यन (Valuing)	छात्र मूल्य स्वीकार करता हैं, मूल्य की प्राथमिकता देता है वचनवद्ध होता है। अपेक्षित व्यवहार— (1) प्रभावित करता है। (2) वृद्धि करता है।

(3) प्रस्तावित करता है।

(4) निर्णय लेता है।

(5) मिलाता है।

संप्रत्ययीकरण (Conceplualization) — छात्र रूपरेखा विकसित करता है उपयोगिता, आकार-प्रकार भावना आदि विकसित होता है।

अपेक्षित व्यवहार—

(1) विभेद करता है।

(2) संबंध स्थापित करता है।

(3) प्रदर्शित करता है।

(4) संकेत तथा तुलना करता है।

व्यवस्थापन (Organization) — छात्र मूल्य की अवधारणा समझता है तथा मूल्यक्रम की व्यवस्था करता हैं।

अपेक्षित व्यवहार—

(1) क्रमिक रूप देता है

(2) संशोधन करता है।

(3) निश्चय करता है।

(4) समायोजन करता है।

चारित्रीकरण (Characterization) — छात्र सामान्यीकरण, समूहीकरण तथा विशिष्टीकरण करता है। अपेक्षित व्यवहार—

(1) दुहराता है।

(2) स्वीकार करता है।

(3) अभ्यास करता है।

(4) विकसित करता है।

9—**क्रियात्मक या मन : शारीरिक पक्ष** : प्रायः ये शारीरिक क्रियाओं के प्रशिक्षण तथा कौशल के विकास की ओर इंगित करते हैं।

वर्ग	विनिदेश–छात्रों के अपेक्षित व्यवहार
उद्दीपन (Implusion)	छात्र अपना चित केन्द्रित करता हैं तथा क्रिया की ओर तत्पर होता है। अपेक्षित व्यवहार— (1) हाथ, सर, आँख तथा शरीर इधर-उधर करता है। (2) बोलने के लिए उत्सुक तथा स्वयं करने के लिए उत्तेजित होता है।
कार्य—(Manipulation)	छात्र क्रिया को पूरा करने का प्रयत्न करता है तथा स्वयं करने के लिए इच्छा प्रकट करता है। अपेक्षित व्यवहार— कार्य को करने के लिए प्रारूप तैयार करता है।
नियंत्रण (Control)	छात्र उपकरणों का दक्षतापूर्वक उपयोग करता है। अपेक्षित व्यवहार— (1) प्रदत्तों के अनुसार रचनाएँ करता है। (2) सारणियों और चार्ट का निर्माण करता है।
संशोधन (Coordination)	छात्र कौशलों में निहित क्रियाओं की सुसम्बद्ध रूप से करता है। (1) यथा पटरी-परकार की सहायता से 15° का कोण बनाने में आवश्यक क्रिया पदों को क्रमिक तथा शुद्ध रूप से अनुसरण करता है।

स्वभावीकरण आदत तथा कौशल (Naturalization habit formation)	आदत पड़ना छात्र स्वचालित रूप में क्रिया करके अर्जित प्रक्रियाओं को स्थायी अंग बना लेता है।

अपेक्षित व्यवहार—

(1) सहजता से करता है।

(2) शुद्धता से करता है।

(3) शीघ्रता से करता है।

(4) आत्म विश्वास के साथ करता है।

10—राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली ने संज्ञानात्मक पक्ष के वर्ग विश्लेषण, संश्लेषण तथा मूल्यांकन को सूचनात्मक (Creativity) उद्देश्य के रूप में रखा है। इस प्रकार एन० सी० ई० आर० टी० के अनुसार संज्ञात्मक पक्ष में वर्गों की स्तरीयता (१) ज्ञान (२) बोध (३) अनुप्रयोग तथा (४) सूचनात्मक माना हैं।

11—उपर्युक्त दी गयी सारणियों की सहायता से उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप में लिखा जाता है। उद्देश्य के लिए दी गयी क्रियाओं का चयन करके पाठ्यवस्तु के तत्व के साथ प्रयुक्त करने से उद्देश्य का व्यावहारिक रूप तैयार हो जाता है। शिक्षण में उद्देश्यों के निर्धारण से कार्य सीमित हो जाता है। शिक्षक तथा छात्रों के कक्षागत व्यवहार निश्चित हो जाते हैं। इससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावो हो जाती है।

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम--राष्ट्रीय दृष्टिकोण

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा जनवरी 1986 में, "नेशनल करीक्यूलम फार प्रायमरी एण्ड सेकेन्डरी एजुकेशन—ए फेम वर्क" शीर्षक से 36 पृष्ठों की एक पुस्तिका प्रकाशित हो चुकी है। उल्लेख्य है कि "शिक्षा की चुनौती—नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य में एक राष्ट्रीय बीज पाठ्यक्रम को विकसित करने की अनुशंसा की गयी है। अतएव प्रस्तुत प्रारूप को शिक्षा की नवीन नीति के संदर्भ में प्रारम्भिक कड़ी के रूप में लिया जा सकता है।

2—वस्तुतः प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के प्रारूप विकास का कार्य वर्ष 1983 में ही प्रारम्भ हो गया था। इसी वर्ष में एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा एक कार्यकारी दल का गठन किया गया था। उक्त कार्यकारी दल का उद्देश्य विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में प्रचलित पाठ्यक्रमों का अभिभार की दृष्टि से अध्ययन करना था। इसी के साथ-साथ परिषद् द्वारा पाठ्यक्रम के विविध पक्षों से संबंधित अध्ययन/परियोजनाएँ कार्यान्वित की गयी। इनके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की आवश्यकता स्पष्टतः परिलक्षित हुई। इस दृष्टि से परिषद् द्वारा एक उच्चस्तरीय समिति गठित की गयी तथा समिति ने पाठ्यक्रम के विभिन्न पहलुओं पर चिन्तन-मनन तथा 4 राष्ट्रीय क्षेत्रीय संगोष्ठियों—कलकत्ता, मद्रास, पुणे तथा उदयपुर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में संबंधित अधिकारियों, विशेषज्ञों, अध्यापकों तथा शिक्षक-प्रशिक्षकों से प्राप्त विचारों, अनुक्रियाओं एवं सुझावों के आलोक में प्रस्तुत प्रारूप का प्रणयन किया है।

3—इस प्रारूप-पुस्तिका में कुल 4 अध्याय हैं – इमर्जिन कनसर्नसएण्ड इमपेरिट्वज करीक्यूलम आर्गनाइजेशन, इवेलुएशन तथा एम्पलमेंटेशन। प्रथम अध्याय में भारत में पाठ्यक्रम के विकास का विहंगावलोकन प्रस्तुत करते हुए उभरती हुई राष्ट्रीय आवश्यकताएँ एवं तदनुरूप हमारी संवैधानिक, सामाजिक-सांस्कृतिक तथा संशैक्षिकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं पर विचार करते हुए उपलब्ध संशोधनों के महत्तम सदुपयोग एवं शिक्षक अधिगम की एक प्रभावी रणनीति की उद्भावना पर बल दिया गया है। संवैधानिक आकांक्षाओं के अन्तर्गत पाठ्यक्रम और सामाजिक संदर्भ, प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण, नागरिकों के मौलिक कर्तव्य तथा शिक्षा समवर्ती विषय के रूप में, की चर्चा की

गयी है। इसी प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक आधारों में समानता, राष्ट्रीय तादात्म्य, वैज्ञानिक दृष्टि, कला तथा सृजन, सूचनाओं का विस्फोटन और एतदर्थ तकनीकी, कार्य और शिक्षा में पारस्परिक सुमेल, मूल्य शिक्षा, पर्यावरण, संसाधन तथा जनसंख्या तथा सामान्य और व्यापक परिप्रेक्ष्य पर विचार किया गया है। संशैक्षिकी परिप्रेक्ष्य में बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम के विकास पर बल हैं।

4—बीज पाठ्यक्रम को आवश्यकता का निरूपण करते हुए प्रारूप में एक ऐसे सामान्य और सर्वनिष्ठ अध्ययन क्रम की विकसित करने की अनुसंशा की गयी जिसमें प्रत्येक विषय का क्षेत्र और उसकी गहराई विनिर्दिष्ट हो। बीज पाठ्यक्रम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सभी विद्यालयों को न्यूनतम निश्चित सुविधाओं को उपलब्ध कराने की भी संस्तुति की गयी है। इसी अध्याय के अन्तिम अनुच्छेद में मूल्यांकन तथा सार्वजनिक परीक्षाओं पर विचार करते हुए कहा गया है कि मूल्यांकन में बालक के व्यक्तित्व के सभी पक्षों संज्ञानात्मक, संवेदनात्मक तथा मनोदैहिक कौशल को सम्मिलित किया जाना चाहिए तथा इस समय की जो सार्वजनिक परीक्षा प्रणाली है, इसे सुधारने का काम शीघ्रता से किया जाना चाहिए जिससे धीरे-धीरे वह मूल्यांकन में परिवर्तित होता जाय।

5—प्रारूप के द्वितीय अध्याय अर्थात् पाठ्यक्रम-संगठन में एक राष्ट्रीय बीज पाठ्यक्रम के मुख्य मुद्दों-चरित्र निर्माण पर बल, शैक्षिक सुविधाओं की समानता, कर्म-संसार की ओर प्रवृत्ति. उपलब्ध का न्यूनतम राष्ट्रीय स्तर, राष्ट्रीय एकता अभिवृद्धि, शिक्षार्थी के अग्रगामी अध्ययन हेतु पार्श्व तथा उर्ध्व गतिशीलता पर विचार करते हुए निम्नलिखित अध्ययन-क्रम (उपलब्धि अवधि, अधिभार सहित) प्रस्तावित है—

(क) पूर्व प्राथमिक शिक्षा : समूह-क्रिया-कलापों तथा खोल-पद्धति भाषा खोल, अंक खोल, परिवेशी-सजगता-खोल-द्वारा। किसी भी विषय की औपचारिक शिक्षण न होना

(ख) अवर प्राथमिक स्तर (कक्षा 1—5) : (1) एक भाषा (30 प्रतिशत)—मातृ भाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा। (ii) परिवेशी अध्ययन (15 प्रतिशत) (iii) गणित (15 प्रतिशत)। (iv) कार्यानुभव/समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (20 प्रतिशत।) (v) कला-शिक्षा (10 प्रतिशत) (vi) स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा (10 प्रतिशिक्षा (10 प्रतिशत)।

(ग) प्रवर प्राथमिक स्तर (कक्षा 6–8) : (i) तीन भाषाएँ (32 प्रतिशत) (ii) विज्ञान (10 प्रतिशत), (iii) गणित (12 प्रतिशत) (iv) सामाजिक विज्ञान 12 प्रतिशत) (v) कार्यानुभाव/समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (12 प्रतिशत) (vi) कला-शिक्षा (10 प्रतिशत) (vii) स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा (12) प्रतिशत

(घ) माध्यमिक स्तर (कक्षा 9–10) (i) तीन भाषाएँ (30 प्रतिशत) विज्ञान (8 प्रतिशत), (ii) गणित (12 प्रतिशत), (iii) सामाजिक विज्ञान (12 प्रतिशत) (iv) भारत-वर्तमान (कन्टमपोरेरी इण्डिया (6 प्रतिशत), (v) कार्यानुभाव/सयाजोपयोगी उत्पादक कार्य (12 प्रतिशत), (vi) कला-शिक्षा (8 प्रतिशत), (vii) स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा (12 प्रतिशत)।

6—त्रिभाषा सूत्र पर विचार करते हुए प्रारूप में तीन भाषाओं का प्रावधान कक्षा 6 से करने की संस्तुति दी है। भाषा संबंधी सूत्र संक्षेप में इस प्रकार :–

अहिन्दी भाषी राज्य :	प्रथम	मातृ/क्षेत्रीय भाषा
	द्वितीय	हिन्दी या अंग्रेजी
	तृतीय	अंग्रेजी या हिन्दी [जो द्वितीय भाषा के रूप में न उपहृत हो]
हिन्दी भाषी राज्य :	प्रथम	हिन्दी
	द्वितीय	कोई आधुनिक भारतीय भाषा या अंग्रेजी
	तृतीय	अंग्रेजी अथवा कोई आधुनिक भारतीय भाषा [जो द्वितीय भाषा के रूप में उपहृत न हो]

शास्त्रीय भाषा [जैसे संकृत] को मातृ अथवा क्षेत्रीय भाषा से संश्लिष्ट कर पढ़ाया जा सकता है। द्वितीय तथा तृतीय भाषाओं के प्रभावी शिक्षण माध्यम के निमित्त प्रथम भाषा को ही व्यवहार में लाना चाहिए। कम से कम सत्र में 200 दिन शुद्ध शिक्षण के लिए उपलब्ध होना चाहिए।

7—प्रारूप में तृतीय अध्याय अर्थात् "मूल्यांकन" के अन्तर्गत इस बात पर बल दिया गया है कि पाठ्यक्रम को बालक के समग्र विकास पर बल देना है। इस दृष्टि से मूल्यांकन का क्षेत्र बालक के व्यक्तित्व के सभी पक्ष हैं। संज्ञानेतर क्षेत्र के मूल्यांकन की तकनीकी में अंतः प्रतिक्रिया की संस्थितियों में प्रेक्षण आदि की बात की गयी है। मूल्यांकन को पुनर्बलन का माध्यम बनाने का प्रस्ताव है तथा बालक के कमियों को दूर करने के लिए निदान और उपचारी कार्यक्रमों के संयोजन पर बल है। वाह्य परीक्षाओं की कमियों और दोषों [यथा नकल की प्रवृत्ति] पर विचार करते हुए सपुस्तक परीक्षा-प्रणाली को व्यापक स्तर पर परीक्षित किए जाने पर बल है। एक अथवा दो विषयों में निम्न उपलब्धि पर छात्रों को अनुत्तीर्ण करने का की प्रथा की आलोचना करते हुए क्रेडिट निस्टम को लागू

करने की संस्तुति दी गयी हैं। शैक्षिक परीक्षण सेवाओं के विकास और छात्रों की रुचि तथा अभिरुचि के आँकलन पर भी बल दिया गया है।

8—प्रारूप के चौथे अध्याय अर्थात् "कार्यान्यिवन" में इस बात को स्वीकार किया गया है कि इस प्रारूप की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हम भारत के बहु-आयामी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से मेल स्थापित करते हुए पाठ्यचर्या, शिक्षण-अधिगम सामग्री, मूल्यांकन की विधा तथा प्रमाण पत्र आदि का क्या प्रावधान कर रहे हैं।

प्रारूप में मत व्यक्त किया गया है कि इसके लिए हमें व्यापक शैक्षिक प्रबन्ध में सुधार, उपलब्ध मानव विकास संसाधनों का महत्तम उपयोग तथा प्रतिबद्धता-मूलक और समयबद्ध शैक्षिक सुधार की परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों को लेना होगा। साथ ही साथ हमें अन्तः अनुशासनिक क्षेत्रों के अनुभवों से भी लाभ उठाना होगा। प्रभावी कार्यान्यिवन की रणनीति के रूप में निम्नलिखित का उल्लेख किया गया है—

—पाठ्यक्रम विकास के लिए वृत्तिक सहयोग।

अध्यापकों सेवारत प्रशिक्षण हेतु वृत्तिक सहयोग।

–कार्यानुभव/समाजोपयोगी उत्पादक कार्य हेतु प्रस्तावित अन्तःसंरचना।

1—संस्थागत तथा प्रबंधकीय सुधार तथा परिवीक्षण-उपकरण।

8—आशा की जानी चाहिए कि पाठ्यक्रम अभिनवीकरण संबंधी इस राष्ट्रीय दस्तावेज की संस्तुतियों के आधार पर हम एक नवीन पाठ्यक्रम का शीघ्र ही निर्माण कर इसे कार्यान्वित करते हुए नूतन भविष्य की ओर अग्रसर होने में समर्थ हो सकेंगे।

वैयक्तीकृत शिक्षण

संसार के समस्त प्राणियों में मानव की स्थिति भिन्न एवं विशिष्ट है। उसे अपनी प्रत्याशा के सन्दर्भ में उपलब्धि को मूल्यांकित करने तथा कर्म फल को साधन के रूप में प्रयुक्त करने की क्षमता प्राप्त है। इन गुणों के अनेक परिणाम एवं प्रतिफल उसे प्राप्त होते रहे हैं। उनमें से एक परिणाम यह भी है कि अपने इन गुणों के कारण वह अपने साधन लक्ष्यों का सीमांकन नही कर पाता और सतत् परिवतन की प्रक्रिया गतिशील रहती हैं। इस प्रक्रिया मुख्य आधार शिक्षा होती है। शिक्षा केवल व्यक्ति ही नहीं अपितु सामाजिक परिवर्तन की भी कारक होती है। यहाँ इस तथ्य से भी अवगत होना आवश्यक है है कि इस परिवर्तन क्रम में दोनों घटकों का मूल्य स्थिर नहीं रहता। कभी व्यक्ति महत्वपूर्ण हो जाता है ओर कभी समाज। इस वरीयता परिवर्तन के दार्शनिक, सांस्कृतिक, भौतिक आदि कारण हो सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में वैयक्तीकृत शिक्षण के महत्व की स्थापना प्रजातांत्रिक मूल्यों में आस्था के कारण सम्भव हुई हैं। क्योंकि प्रजातांत्रिक विचारधारा व्यक्ति के वैयक्तिक विकास अथवा श्रीवृद्धि को सर्वोच्च है।

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ही यूरोपीय देशों में प्रजातांत्रिक मूल्य प्रतिष्ठित होने लग गये थे। इसका प्रतिफल यह हुआ कि व्यक्ति के महत्व को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से व्यक्ति की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। शिक्षा-व्यवस्था में भी शिक्षा पाने बाला "व्यक्ति" सर्वाधिक महत्वपूर्ण घोषित हुआ। सामाजिक उपलब्धि के प्रतिमानों को "व्यक्ति" के ऊपर थोपने के आग्रह में भी शिथिलता आने लगी।

व्यक्ति की अधिक समीप से जांच-पड़ताल के फलस्वरूप अनेक ऐसे तथ्य सामने आये जो प्रचलित मान्यताओं पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करने लगे। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों ने यह उद्घाटित किया कि प्रत्येक दूसरे से भिन्न एवं विशिष्ट है। यह भिन्नता एवं विशिष्टता केवल शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, संवेगात्मक आदि शक्तियों की मात्रा अथवा परिमाप के संदर्भ में ही नही है अपितु इन शक्तियों के अनुप्रयोग की रीति एवं दृष्टिकोण में भी है। समान शक्तियों के होते हुए भी यह आवश्यक नहीं है कि कक्षा के सभी छात्र किसी उत्तेजना के प्रति एक सी ही प्रतिक्रिया करें। इन तथ्यों ने व्यक्ति की वैयक्तिक विशिष्टता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। एक ओर जहाँ अधिगम प्रक्रिया की प्रकृति एव क्षेत्र में हुये विस्तार ने व्यक्ति की वैयक्तिता को निश्चिन करने तथा तदनुकूल व्यवस्था करने की सुविधा प्रदान की वहीं तकनीकी प्रगति एवं विकास ने हमें ऐसे

विश्वसनीय साधन (टूल्स) प्रदान किया जिससे इस दिशा में किये जा रहे प्रयास को गति मिली।

वैयक्तीकृत शिक्षण के अन्तर्गत शिक्षा-व्यवस्था को व्यक्ति के अनुकूल बनाने का प्रयास किया जाता है। संगठनात्मक व्यवस्था, पाठ्यचर्या, शिक्षण-विधि, मूल्यांकन आदि को भी व्यक्ति की प्रकृति एवं प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर परिवर्तित करना पड़ता हैं। वैयकीकृत शिक्षण की संकल्पना का इतिहास बहुत नया नहीं है। यद्यपि वर्तमान में इसका श्रेय यूरोपीय देशों को दिया जाता है परन्तु भारत को प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में भी आज के वैयकीकृत शिक्षण के मूल तत्व देखे जा सकते हैं। पाठ्यक्रम के निर्धारण, पाठ्यचर्या के लिए अवधि का सीमांकन अध्ययन की गति एवं क्रम तथा शिक्षण विधियों का चयन आदि सभी क्षेत्रों में व्यक्ति की वैयक्तिक भिन्नता एवं विशिष्टता को महत्व के साथ देखा जाता था। केवल तकनीकी सुविधा का समावेश अथवा शिक्षण में मशीनों के प्रयोग को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रों प्राचीन भारत और आज के वैयकीकृत शिक्षण में कोई तात्विक अन्तर नहीं है।

परन्तु यहाँ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि व्यक्ति की वैयक्तिकता के प्रति सामाजिक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत भी यथासंभव प्रयास सर्वत्र किया जाता है। आज विद्यालयों में जो उपाय इस दिशा में किये जाते हैं, वे निम्नलिखित हैं :-

(क) पाठ्यचर्या में किसी प्रकार परिवर्तन नहीं किया जाता, छात्र को ही उससे पृथक कर दिया जाता है अथवा इस प्रकार के मिलते-जुलते छात्रों का एक अलग वर्ग बना लिया जाता है।

(ख) विविध प्रकार की पाठ्यचर्याओं में से अनुकूल पाठ्यचर्या के चयन की सुविधा प्रदान की जाती है।

(ग) पाठ्यचर्या की मुख्य धारा से छात्र को जोड़ने के लिए उसकी व्यक्तिगत समस्याओं का उपचार किया जाता है।

(घ) एक ही प्रकारके पाठ्यक्रम को विविध प्रकार छात्रों को भिन्न-भिन्न विधियों से पढ़ाया जाता है।

(ङ) अलग-अलग ढंग का गृह-कार्य दिया जाता हैं।

(च) समूह अथवा टोली-कार्य को महत्व दिया जाता है। योजना पद्धति अपनाई जाती है।

ऊपर प्रचलित सामाजिक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत अति विशिष्ट अथवा भिन्न बालक/बालिकाओं की शिक्षा के लिये किये जाने वाले उपायों का उल्लेख किया गया। परन्तु यह उपाय "काम चलाऊ" प्रकार के हैं। वैयक्तीवृत (पसर्नलाइज्ड) शिक्षण का अवधारणा के पाँच प्रमुख तत्व हैं :—

(क) स्वतंत्र अध्ययन (ख) अवर्गीकृत व्यवस्था (नान ग्रेडेडनेस) (ग) स्वतंत्र विद्यालय उपागम (घ) प्रोग्राम और कम्प्यूटर साहायित शिक्षण तथा (ङ) निरन्तर विकसित होने वाली पाठ्यचर्या।

(क) स्वतंत्र अध्ययन :—इसके अन्तर्गत अध्ययन करने वाला अधिगम की क्रियाओं का चयन तथा मूल्यांकन स्वयं करता है। 1968 में कैपफर और स्पेनसन ने यह विचार व्यक्त किया था कि स्व-शिक्षण की इकाइयाँ स्वतंत्र अध्ययन की अपेक्षाओं को पूरा करती है और इस प्रकार स्वतंत्र अध्ययन पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग है।

वैक्तीकृत शिक्षण के कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वतंत्र अध्ययन का प्रयोग अमेरिका में सर्वाधिक किया जा रहा है। स्वतंत्र अध्ययन के कार्यक्रम के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता को इस बात की पूरी स्वतन्त्रता होती है कि वह क्या पढ़ेगा और कहाँ पढ़ेगा आदि बातों पर स्वयं ही निर्णय करें।

(ख) नान ग्रेडेडनेस : ब्राउन के (1963) अनुसार नान ग्रेडेड विद्यालय वे विद्यालय हैं जहाँ छात्र अपनी रुचि के अनुसार पाठ्यचर्या के अनुसरण की सुविधा प्रदान की जाती है। इन विद्यालयों में वर्ग, स्तर और क्रम को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। हावर्ड और बाडवेल ने भी (1956] इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि इन विद्यालयों में छात्रों को किसी वर्ग अथवा समूह में बाँटने का आधार आयु नहीं होती। इनमें वर्षायु की अपेक्षा आन्तरिक क्षमता, रुचि, अभिवृत्ति अथवा प्राथमिकताओं को समूहन का आधार बनाया जाता है।

प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर अनेक नान ग्रेडेड विद्यालयों की स्थापना अमेरिका में हो चुकी है। इन विद्यालयों से संलग्न लोगों की आम धारणा साकारात्मक ही है। प्राथमिक स्तर पर सबसे प्रसिद्ध नान ग्रेडेड विद्यालय एंजिल्स में स्थित है जिसे यूनिवर्सिटी लेबोरेटरी विद्यालय के नाम से जाना जाता है। इस विद्यालय में प्रेरणास्रोत सम० इण्टर तथा जान गुड केण्ड हैं। माध्यमिक स्तर पर सबसे प्रसिद्ध विद्यालय मेलबोर्न हाई स्कूल है।

यहाँ नान ग्रेडेड विद्यालयों की प्रभावकारिता के संबंध में कई अध्ययन भी किये गये हैं। अध्ययनों का निष्कर्ष सामान्यता यही है कि इन विद्यालयों में छात्रों की उप-

लब्धि में धनात्मक सुधार होता है। उपलब्धि में वृद्धि का मुख्य कारण पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक संगठन के ढाँचे में किये गये परिवर्तन को बताया जाता है। परन्तु साथ ही भावी उपलब्धि के संबंध में आशंका व्यक्त की गई है।

1967 में अमेरिका में किये गये एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि लगभग 50 प्रतिशत विद्यालयों में नान ग्रेडेड विद्यालयों की संकल्पना का कार्यान्वयन किया जा रहा हैं। निश्चय ही नान ग्रेडेड विद्यालयों की लोकप्रियता निरन्तर वृद्धि की ओर है।

[ग] उन्मुक्त विद्यालय उपागम (की स्कूल एप्रोच) :–

इस प्रकार के विद्यालय का जन्म का कारण परम्परावादी विद्यालयों द्वारा व्यक्तिगत अधिकारों का अतिक्रमण था परन्तु इस संबंध में मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई प्रेरणा कम महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता हैं। इन विद्यालयों में वैयक्तिक विकास को गतिशील बनाने का प्रयत्न किया जाता हैं अधिगम के लिये स्वस्थ वातावरण को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है।

प्रसिद्ध शिक्षाविद् ए० एस० नील ने इंगलैंड में समरहिल नामक स्थान पर इस श्रेणी के प्रथम विद्यालय की स्थापना की थी। इस विद्यालय का स्वस्थ मनोवैज्ञानिक वातावरण इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसके सृजन में छात्रों का सहभाग सर्वाधिक है यहाँ विद्यालय समुदाय के प्रत्येक सदस्य की वैयक्तिकता का समादर किया जाता है। पारस्परिक अभिभाषण एवं संवाद में बनावटी पर का नितान्त अभाव हैं। विद्यालय समुदाय के सभी सदस्य आपस में बेझिझक वार्तालाप करते हैं।

इस विद्यालय का प्रमुख लक्ष्य यह देखना है कि बच्चे के ऊपर समाज के किसी मूल्य को बिना लादे हुये विकसित होने का क्या परिणाम होता है।

उन्मुक्त विद्यालय उपागम के मुख्य समर्थक ए० एस० नील, व्यक्ति रोजर्स, जार्ज लियोनार्ड और अन्य लोग हैं। इस उपागम में वैयक्तीकृत शिक्षण पर बल दिया जाता हैं। अध्येता के सन्मुख यथार्थ अधिगम-अनुभव प्रस्तुत किये जाते हैं। कृत्रिम अधिगम अनुभव के लिये इस उपागम में स्थान नहीं होता साथ ही इस बात पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है कि पर्यावरण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पूर्णतया स्वस्थ हो।

(घ) प्रोग्राम और कम्प्यूटर साहायित शिक्षण :

प्रोग्राम्ड शिक्षण के अन्तर्गत शिक्षण अनुभव प्रदान करने का कार्य शिक्षक के स्थान पर प्रोग्राम करता है। प्रोग्राम के माध्यम से अध्येता को सुनिश्चित एवं पूर्व निर्धा-

रित व्यवहारों के मध्य से गुजरना होता हैं। ये प्रोग्राम इस प्रकार बनाये जाते हैं कि अध्येता बाद में भी वांछित अथवा निर्देशित दिशा में ही व्यवहार करें।

प्रोग्राम दो प्रकार के होते हैं :–अनुरेखीय और शाखायित प्रोग्राम बहुत ही सरल और शाखामित प्रोग्राम दुरूह प्रकार के बनाये जा सकते हैं। सामान्यतया अनुरेखीय सरल शाखामित प्रोग्राम दूरूह होते हैं। छात्रों की समस्याओं के निदान के संबंध में अनुरेखीय की अपेक्षा शाखामित प्रोग्राम अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुये हैं। जटिल एवं दुरूह प्रकार के प्रोग्रामों का शिक्षण यांत्रिक उपकरणों की सहायता से सुगम हो जाता है। इंगलैंड में कुछ ऐसी पाठ्य पुस्तकें तैयार की गई है जिनके शिक्षण में यांत्रिक उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती है। निदानात्मक शिक्षण के संबंध में कम्प्यूटर के प्रयोग का महत्व स्थापित हो चुका है। बड़े समूहों को एक साथ शिक्षा देने के लिये भी कम्प्यूटर बड़े ही लाभदायक सिद्ध हुये हैं। "टाकिंग टाइपराइटर" का प्रयोग लिखना-पढ़ना सिखाने के लिये निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण हैं।

[ङ] सतत प्रगति पाठ्यचर्या (कान्टीनुअल प्रोग्रेस करीकलम) :

इसके अन्तर्गत छात्र अपनी गति, लय एवं सामर्थ्य के अनुसार पाठ्यक्रम को ग्रहण करता है। समय-सारणी अथवा किसी स्तर विशेष के लिये निर्धारित समय-रेखा अथवा अवधि छात्र की व्यक्तिगत प्रगति एवं उपलब्धि को प्रभावित नहीं करते। वरमिंघम और पिट्सवर्ग में इस प्रकार के शिक्षण की उपादेयुता को परखने के उद्देश्य से कई अध्ययन किये गये। अध्ययनों का निष्कर्ष कान्टीनुअस प्रोग्रेस करीकुलम की संकल्पना की प्रभाव-कारिता को प्रमाणित करता हैं।

प्रजातांत्रिक मूल्यों में आस्था की वृद्धि के साथ वैयक्तीकृत शिक्षण की संभावनाओं में विस्तार अपरिहार्य हैं। तकनीकी प्रगति ने इस दिशा में किये जा रहे प्रयास को और भी अधिक सुगम और सार्थक बनाया हैं। परन्तु विकासशील देशों की अपनी समस्याएँ हैं। उन समस्याओं के सन्दर्भ में इस खर्चीली विद्या का प्रयोग एवं प्रसार कितना हितकर होगा, इस पर भी विचार करना आवश्यक होगा। साथ ही शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया में मानवीय भूमिका के महत्व के पक्ष को ध्यान में रखने की आवश्यकता की भी स्मरण रखना आवश्यक है।

पाठ्यक्रम में नवाचार

शिक्षा प्रक्रिया में पाठ्यक्रम का मुख्य स्थान है। पाठ्यक्रम वस्तुतः विद्यालय की आत्मा का प्रतिनिधित्व करता है। यही वह माध्यम है जो बालक और शिक्षक दोनों का आधार प्रस्तुत करता है। यह उनकी क्रियाओं की सीमा भी निश्चित करता है जिससे शिक्षा की समस्त योजना निश्चित उद्देश्यों के अनुसार संचालित होती रहे। व्यापक अर्थ में पाठ्यक्रम समस्त अनुभवों का वह योग है जिसे बालक विद्यालय प्रांगण में प्राप्त करता है। पाठ्यक्रम नवाचार में व्यापक रूप से वे समस्त नियोजित अधिगम-अनुभव सम्मिलित होते हैं जिनको किसी एक सामाजिक संरचना में शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए छात्रों द्वारा अर्जित किया जाता है। ऐसे अनुभव विद्यालय एवं विद्यालय के बाहर औपचारिक एवं अनौपचारिक विधियों द्वारा प्राप्त होते हैं। अतः पाठ्यक्रम नवाचार की संकल्पना के अनुसार पाठ्यक्रम शिक्षा का आवश्यक साधन है, यह वह माध्यम है जिसके द्वारा मानव को शिक्षित करना एवं उन्हें मानवीय गुणों से संयुक्त करना है। अब पाठ्यक्रम में मात्र विषय-वस्तु का ही उल्लेख नहीं किया जाता वरन् निर्धारित किये हुए सम्पूर्ण अधिगम अनुभव, अधिगम क्रियाएँ, शिक्षण सामग्री, शिक्षण सोपान तथा मूल्यांकन प्रक्रियाएँ भी सम्मिलित होती हैं जिनके द्वारा छात्रों में मानवीय गुणों का समन्वित विकास होता है।

शैक्षिक अनुसंधान द्वारा आज हम बालकों के विकास, उनकी क्षमताओं और आवश्यकताओं का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने में लगे हुए हैं। फलतः पाठ्यक्रम निरन्तर इनसे प्रभावित हो रहा है। तदनुसार शिक्षण और मूल्यांकन में भी व्यापक परिवर्तन हो रहे हैं। जनसंख्या वृद्धि और वैज्ञानिक ज्ञान के विस्फोट ने भी शिक्षा को नयी दिशा दी है। ज्ञान की वैधता एवं उपलब्धि के साथ-साथ तकनीकी के उपयोग से विद्यालयीय साधनों के अतिरिक्त अन्य माध्यमों ने भी ज्ञान-प्राप्ति की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्रदान की हैं। इन समस्त साधनों और प्रभावों को उपयुक्त ढंग से शैक्षिक प्रयोग में लाने के लिए प्रसिद्ध शिक्षाविद् डा० ब्रूनर और पियाजे ने अनेक प्रयोग और परिणाम प्राप्त किये जिससे पाठ्यक्रम विर्माण और संचालन को नयी दिशा प्राप्त हुई।

हमारे देश में "पाठ्यक्रम नवाचार" नितान्त नवीन शैक्षिक शब्दावली है। नवाचार का अर्थ है नव आचार अर्थात व्यवहार और अनुभव की नयी दिशाओं की खोज। पाठ्यक्रम के क्षेत्र में 1950 के आसपास अमेरिका में विशेष क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। गणित और विज्ञान के पाठ्यक्रमों में आमूल-चूल परिवर्तन किये गये। इस परिवर्तन का

प्रत्यक्ष लाभ वैयक्तिक और राष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका को प्राप्त हुआ। वैज्ञानिक क्षमता का विकास, उत्पादन में वृद्धि और सामरिक सुरक्षा में अर्जित अमेरिकी सफलता ने विश्व के राजनेताओं और शिक्षाविदों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। वस्तुतः अब तक की प्रचलित शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र या तो शिक्षक को माना जाता था या शिक्षार्थी को किन्तु पाठ्यक्रम में नवाचार की धारणा ने पाठ्यक्रम को ही सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु स्वीकार किया। आरम्भ में प्रो० ब्रूनर की धारणा थी कि बौद्धिक क्रिया हर स्थान पर एक ही है चाहे वह ज्ञान की सीमा पर हो या कक्षा में किन्तु बाद में उन्होंने अपने विचारों को व्यापक रूप देते हुए पाठ्यक्रम को सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार तैयार करने पर बल दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश में पाठ्यक्रम निर्धारण में अनेक परिवर्तन किये गये। लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित नवीन समाज की संरचना के लिए विभिन्न शिक्षा आयोगों ने पाठ्यक्रम-परिवर्तन हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिये। वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की सम्पूर्ति के लिए सबसे क्रान्तिकारी परिवर्तन का सुझाव 1966 में कोठारी कमीशन द्वारा प्रस्तुत किया गया कि सामाजिक प्रगति और राष्ट्रीय सुदृढ़ता के लिए विद्यालयीय पाठ्यक्रमों में ऐसी विषय सामग्री का चयन किया जाय जिससे उत्पादन में वृद्धि, सामाजिक और राष्ट्रीय एकता का विकास, लोकतांत्रिक मूल्यों की प्राप्ति, देश का आधुनिकीकरण तथा नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति संभव हो सके।

शिक्षा को जन जीवन की आवश्यकताओं से जोड़ने के लिए तथा उसे सामाजिक परिवर्तन का प्रभावकारी साधन बनाने के लिए हमारे देश में विद्यालयीय पाठ्क्रम में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पाठ्यक्रम सुधार की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किये गये। महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा, टैगोर की सार्वभौमिक मानवतावादी प्राकृतिक शिक्षा और महर्षि अरविन्द की आध्यात्मिक शिक्षा इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण रही है। सुनियोजित रूप से इसका सूत्रपात 1937 में डा० जाकिर हुसेन द्वारा बेसिक शिक्षा के सन्दर्भ में किया गया था। 1949 में विश्वविद्यालय शिक्षा द्वारा पाठ्यक्रम पर गंभीर विचार किया गया। विद्यालयीय शिक्षा में सुधार के लिए 1953 में माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अत्यन्त महत्व-पूर्ण सुझाव दिये गये। 1966 में कोठारी आयोग ने राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यक्रम सुधार के क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किये। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने 1975 में पाठ्यक्रम परिवर्तन के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों की स्थापना की—

(क) पाठ्यक्रम देश के विकास से संबंधित होना चाहिए।

(ख) इस युग में किसी भी विषय का पृथक अस्तित्व संभव नहीं है।

अतः विषयवस्तु के संगठन में भिन्न-भिन्न विषयों का पारस्परिक संबंध बनाये रखना चाहिए।

(ग) पाठ्यक्रम द्वारा बालकों में नवीन ज्ञान का सीखना ही सब कुछ नहीं माना जाना चाहिए अपितु आवश्यक कौशल के साथ-साथ अनुकूलन की योग्यता का भी समावेश होना चाहिए।

(घ) विषय सामग्री जीवन और कर्म से जुड़ी हो तथा विद्यालय के हर पक्ष इतने नमनीय हों कि समाज के निकट आ सकें।

(ङ) अधिगम अनुभवों का चयन छात्रों की आवश्यकताओं, क्षमताओं और योग्यताओं को ध्यान में रखकर किया जाय। विषयवस्तु का चयन करते समय उस विषय के मूल संप्रत्ययों का चयन किया जाय जो समकालीन, व्यापक, संतुलित और सामाजिक औचित्य से युक्त हों।

(च) शैक्षिक क्रियाएँ कर्म संबंधी हों, आन्तरिक मूल्यों पर बल दिया जाय। विषय सामग्री रुचिकर, सीखने योग्य एवं सार्थक हो।

1985 का वर्ष देश की शिक्षा लिए युगान्तर कारी सिद्ध हो रहा है। सम्पूर्ण देश में इक्कीसवीं शताब्दी की शिक्षा पर गंभीर चिन्तन-मन्थन चल रहा हैं। नयी शिक्षा प्रणाली में विद्यालयीय पाठ्यक्रम में व्यक्ति, समाज और राष्ट्रीय सापेक्ष्य में आमूल चूल परिवर्तन करने का विचार किया जा रहा है। पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन के जो विचार उभर कर सामने आये हैं, उनका सारांश निम्नवत् है :-

(क) पाठ्यक्रम को नित्य नमनीय बनाये रखा जाय तथा व्यक्ति समाज एवं राष्ट्रकी अपेक्षाओं के अनुरूप उसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहे।

(ख) पाठ्यक्रम व्यवसायपरक हो जिससे व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह स्वावलम्बी बन सके।

(ग) पाठ्यक्रम में व्यापक राष्ट्रीय चेतना प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। यथा संभव सम्पूर्ण देश में समान पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए।

(घ) नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को वैज्ञानिक निष्पत्तियों से समन्वित करके पाठ्यक्रम को व्यापक मानवीय आधार प्रदान किया जाय।

उक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में पाठ्यक्रम नवाचार आधुनिक शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

अधिगम प्रवीणता

शिक्षा के समस्त प्रयास मूलतः शिक्षार्थी के अधिगम से संबंधित है। पाठ्यक्रमीय विषयों में शिक्षार्थी की अधिगम में उपलब्धि, उसकी सफलता असफला का आकलन समय-समय पर आयोजित मूल्यांकन/परीक्षाओं द्वारा किया जाता है। इसके लिए आंतरिक मूल्यांकन (गृह परीक्षाओं) अथवा परीक्षा संस्थाओं द्वारा आयोजित वाह्य परीक्षायें संचालित की जाती हैं। मूल्यांकन का जो भी स्वरूप हो परीक्षाफल में विद्यार्थियों का श्रेणी विभाजन प्रदर्शित किया जाता है, चाहे "ग्रेड" (Grade) ए०, बी०, सी०, डी० आदि द्वारा अथवा प्रथम, द्वितीय, तृतीय अनुत्तीर्ण श्रेणियों द्वारा। किसी भी परीक्षाफल का विश्लेषण किया जाय तो यह प्रकट होगा कि छात्रों का बहुत कम प्रतिशत प्रथम श्रेणी या ग्रेड "ए" प्राप्त कर पाता है, अधिकांश उत्तीर्ण छात्र द्वितीय या तृतीय श्रेणी प्राप्त करते हैं और अनुत्तीर्ण छात्रों का प्रतिशत भी कम नहीं होता। माध्यमिक शिक्षा परिषद् की परीक्षाओं, हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट में तो लगभग 50% परीक्षार्थी अनुत्तीर्ण घोषित होते हैं। ऐसी कार्य प्रणाली से समय, संसाधनों तथा शक्ति का अपव्यय हो रहा है। इससे बहुसंख्यक विद्यार्थियों के आत्म-विश्वास का हनन होता है और उनमें हीन-भावना की सृष्टि होती है।

अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों को छोड़कर भी यदि शेष के अधिगम-स्तर पर विचार करें तो देखेंगे कि उसमें अत्यधिक वैषम्य उत्तीर्ण है परीक्षार्थियों के प्राप्तांक 33% से 90% तक और कुछ विषयों जैसे गणित में तो उससे भी अधिक मिलेंगे।

अध्यापक भी शिक्षार्थियों के अधिगम स्तर से इस प्रकार के वैषम्य को परम्पराक्रम से स्वाभाविक और अपरिहार्य मानते चले आ रहे हैं क्योंकि यह विद्यालय की कार्य प्रणाली का अंग बन चुका है। ऐसे वैषम्य की अनिवार्यता को व्यापक मान्यता प्राप्त होने के कारण उसके निवारण की दिशा में वांछित प्रयासों की ओर उदासीनता ही परिलक्षित होती है। अस्तु अधिक से अधिक शिक्षार्थियों के अधिगम को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षण सामग्री तथा विधियों का उचित संयोजन आवश्यक है।

इसी अनुभूति के फलस्वरूप अधिगम प्रवीणता की संकल्पना का उदय हुआ है और यह धारणा उद्भूत हुई है कि 90 प्रतिशत शिक्षार्थी अधिगम में प्रवीणता प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि अधिगम में प्रवीणता हम किस स्तर को माने।

प्रवीणता हम उस अधिगम स्तर को मान सकते हैं जिसे हम प्रथम श्रेणी अथवा ए ग्रेड के योग्य समझते हैं। इसे हम अन्य मापदण्ड द्वारा भी पारिभाषित कर सकते हैं, यथा हम यह निर्धारित कर सकते हैं कि पाठ्यक्रम में सम्मिलित समस्त विशिष्ट अधिगम लक्ष्यों में से 80 प्रतिशत की प्राप्ति को हम अधिगम प्रवीणता मानेंगे। इस प्रकार अधिगम प्रवीणता की संकल्पना में यह निहित है कि अधिकांश शिक्षार्थियों (90 प्रतिशत) को पाठ्यक्रम के लक्ष्यों में निर्धारित स्तर (प्रथम श्रेणी या "ए" ग्रेड या 80 प्रतिशत) अधिगम लक्ष्यों की उपलब्धि की प्राप्ति में सफलता के लिए शिक्षण अधिगम योजना अपनायी जाय। मूलतः यह वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखकर अधिगम कार्यक्रम के प्रबन्ध करने की समस्या है।

वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर ही अधिकांश छात्रों के अधिगम स्तर का उच्च न होना स्वाभाविक माना जाता रहा है। इस धारणा को प्रसामान्य वितरण से भी बल मिलता रहा है। इसके आधार पर यह विश्वास किया जाता है कि शीर्षस्थ 10 प्रतिशत छात्रों की उपलब्धि उच्च स्तर की होगी। दूसरे छोर पर स्थित 10 प्रतिशत छात्रों में अधिगम अति न्यून होगा। शेष की उपलब्धि इन दोनों स्तरों के मध्य वितरित होगी। परन्तु ऐसा निष्कर्ष भ्रामक है क्योंकि प्रसामान्य वितरण संयोग पर निर्भर घटकों के विषय में ही पूर्णतः सत्य है और शिक्षा एक प्रयोजनयुक्त प्रयास है जिसके कारण शैक्षिक उपलब्धि का प्रसामान्य वितरण होना उचित नहीं हैं, बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त है कि छात्रों की उपलब्धि का वितरण जितना समान हो उतना ही अधिक शिक्षण प्रयासों को निष्प्रभावी समझना चाहिए।

शिक्षार्थियों के अधिगम-स्तर में विस्तृत वैषम्य के संरक्षण में संभवतः यह कारक भी उत्तरदायी है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था में उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को कार्य में लगाने की क्षमता नहीं है जिसके कारण प्रतिभा के विकास की अपेक्षा प्रतिभावान व्यक्तियों के चयन की ओर विशेष ध्यान है और शिक्षा के हर स्तर पर बहुसंख्यक शिक्षार्थियों को अयोग्य घोषित करने की विधा प्रचलित है। परन्तु इस मानव-शिक्षा में निवेश अधिक लाभप्रद है (शुल्ज Shultze 1963) यह आवश्यक है कि अधिक से अधिक व्यक्ति माध्यमिक और उच्च शिक्षा प्राप्त करें और अपने अध्ययन विषय में प्रवीणता प्राप्त करके विद्यालय से निकलें।

यह भी विचारणीय है कि ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों आदि में द्रुतगामी परिवर्तनों के कारण यह आवश्यक है कि व्यक्ति जीवन पर्यन्त शिक्षा ग्रहणकरता रहे, परन्तु जिन व्यक्तियों को विद्यालयीय अधिगम अनुभवों में अपनी हीनता का ही बोध हुआ हो उसके जीवन पर्यन्त अधिगम की क्या आशा की जा सकती है। उसमें उन्हें कोई रुचि न होगी।

अधिगम प्रवीणता से सबन्द्ध घटक :

अधिगम प्रवीणता के लिए शिक्षण-अधिगम योजना निरूपित करने के लिए केरोल (Carrol, 1963), द्वारा प्रस्तुत विचारों को आधार बनाया जा सकता है और ब्रूनर (Bruner, 1966), ग्लेजर (Glaser, 1968) गुडलैंड और ऐण्डर्सन (Goodland & Anderson, 1959) जैसे शोधकर्ताओं के विचारों से भी लाभ उठाया जा सकता है। इनके शोध निष्कर्षों के परिप्रेक्ष्य में अधिगम प्रवीणता के लिए मार्गदर्शन मिलता है।

कैरोल द्वारा प्रस्तुत विद्यालयीय अधिगम प्रारूप से प्रकट होता है कि चूंकि प्रत्येक विषय के लिए अभिरुचि का विवरण प्रसामान्य पाया जाता है, इसलिए यदि किसी विषय में समस्त विद्यार्थियों को एक ही प्रकार का शिक्षण प्रदान किया जाय अर्थात शिक्षण की मात्रा गुणवत्ता तथा अधिगम के लिए दिया गया समय सबके लिए समान हो तो उनकी उस विषय में उपलब्धि का वितरण भी प्रसामान्य होगा और अभिरुचि तथा उपलब्धि में उच्च सहसंबंध (.70 अथवा अधिक) होने की सम्भावना है। परन्तु यदि प्रत्येक विद्यार्थी के लिए उसकी आवश्यकतानुसार समुचित समय दिया जाय तो अधिकतर विद्यार्थी विषय में प्रवीणता प्राप्त कर सकेंगे और अभिरुचि तथा उपलब्धि में सहसंबंध नगण्य होगा। यही अधिगम प्रवीणता के लिए आधारभूत सूत्र हैं। इस परिप्रेक्ष्य में उन घटकों पर विचार करने की आवश्यकता है जिनसे अधिगम प्रवीणता के लिए कार्ययोजना निर्मित करने की दिशा का बोध होता है। ये घटक निम्नलिखित हैं :—

अभिरुचि—

यह सर्वमान्य है कि विशिष्ट विषयों के अधिगम की क्षमता विभिन्न विद्यार्थियों में भिन्न भिन्न होती है और अभिरुचि परीक्षण में विद्यार्थी की उपलब्धि को भावी शैक्षिक उपलब्धि का द्योतक माना जाता है। इससे यह धारणा बन गयी है कि केवल उच्च अभिरुचि वाले छात्र ही अध्ययन विषय के जटिल प्रत्ययों को ग्रहण कर सकते हैं और शेष उसके सरल प्रत्यय ही सीख सकेंगे। इस प्रकार अभिरुचि तथा उपलब्धि में कार्य-कारण के संबंध की धारणा विकसित हो गयी है।

इसके विपरीत "कैरोल" का विचार है कि अभिरुचि शिक्षार्थी द्वारा अधिगम-विषय में प्रवीणता प्राप्त करने के लिये आवश्यक समय का द्योतक है। इस धारणा के अनुसार, सभी शिक्षार्थी अधिगम में प्रवीणता प्राप्त कर सकते हैं, अन्तर यह है कि कुछ को कम समय लगेगा और कुछ को अधिक। इस प्रकार यदि प्रत्येक शिक्षार्थी को अधिगम के लिए पर्याप्त समय दिया जा सके तो लगभग सभी उसमें प्रवीणता प्राप्त कर सकेंगे। "कैरोल" की उक्त संकल्पना शिक्षा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

परन्तु यहाँ यह भी विचार करने की आवश्यकता है कि क्या सभी शिक्षार्थी विषय के जटिलतम स्तर तक पहुँच सकेंगे। इस विषय में यह कहा जा सकता है कि अभिरुचि के प्रसामान्य वितरण में शीर्षस्थ 5 प्रतिशत शीघ्रता और सरलता से अध्ययन-गत विषय के जटिलतम अंशों को सीख सकेंगे क्योंकि उसके लिए उनमें विशेष क्षमतायें विद्यमान हैं। इसके विपरीत वितरण के निम्नतम स्तर पर स्थित 5 प्रतिशत में कुछ ऐसी अक्षमतायें होंगी जिसके कारण उन्हें अधिगम में कठिनाई होगी जैसे रंगांध (Colour Blind) व्यक्ति के लिए रंजनकला सीखना कठिन है। शेष 90 प्रतिशत मध्यवर्ती शिक्षार्थी विषय को उच्च स्तर तक सीख सकते हैं। इन मध्यवर्ती छात्रों के लिए अभिरुचि अधिगम सापेक्ष्य गति की द्योतक है, उनके उपलब्धि-स्तर की नहीं। उक्त विवेचन से प्रकट होता है कि मध्यवर्ती 90 प्रतिशत शीर्षस्थ 5 प्रतिशत अर्थात कुल 95 प्रतिशत शिक्षार्थी अधिगम प्रवीणता प्राप्त कर सकते हैं परन्तु उसके साथ यह भी स्पष्ट है कि कुछ को अधिक समय और प्रयास की आवश्यकता होगी। यह भी संभावना है कि कुछ के लिए इतने अधिक समय की आवश्यकता हो कि उतने समय की व्यवस्था संभव न हो। अतः ऐसी प्रभावी विधाओं की खोज की आवश्यकता है जिससे अधिगम के लिए आवश्यक समय घटाया जा जा सके और सभी शिक्षार्थी निर्धारित समय के अन्तर्गत वांछित अधिगम स्तर प्राप्त कर सकें।

सामान्यतः यह देखा जाता है कि अध्यापक ऐसी शिक्षण विधा अपनाते हैं जो सामूहिक शिक्षण के लिए मानक के रूप में स्थापित हो गयी है और इस प्रकार एक कक्षा समूह के सभी विद्यार्थियों को एक ही प्रकार का शिक्षण प्रदान करने की परम्परा है। साथ ही निर्धारित पाठ्यपुस्तकों के रूप में शिक्षण सामग्री की एक ही प्रकार की प्रस्तुत की जाती है इसके अतिरिक्त अनुसंधान कार्य भी बहुधा समूह के लिए उपयोगी श्रेष्ठ शिक्षण विधियाँ तथा शिक्षण सामग्री की खोज के प्रयास करते हैं।

इसके विपरीत यह समझने की आवश्यकता है कि विभिन्न शिक्षार्थियों को अधिगम में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों की आवश्यकता हो सकती है। भिन्न भिन्न शिक्षार्थी एक ही विषयवस्तु को भिन्न-भिन्न शिक्षण विधियों की सहायता से प्रभावी रूप में सीख सकेंगे। अतः शिक्षण की गुणात्मकता शिक्षकों की आवश्यकता पर निर्भर करती है।

"कैरोल" की परिभाषा के अनुसार शिक्षण की गुणात्मकता इस पर निर्भर करती है कि अधिगम-विषय का क्रमायोजन, प्रस्तुतीकरण और उसकी व्याख्या किस सीमा तक शिक्षार्थी के अधिकाधिक अधिगम के लिए उपयुक्त है, वास्तव में इस विषय में व्यापक शोध की आवश्यकता है कि व्यक्तिगत विभिन्नता के अनुकूल शिक्षण विधियाँ हो। इस बात

के प्रमाण उपलब्ध हैं—कि जहाँ शिक्षार्थी को स्वतंत्र रूप से अधिगम में वांछित सफलता प्राप्त परिस्थितियों की आवश्यकता होती है (कांग्रीव Congreve 1965) यह सहज ही समझा जा सकता है कि कुछ शिक्षार्थियों को कोई विचार समझने के लिए अपेक्षाकृत अधिक उदाहरणों, विस्तृत व्याख्या, श्रव्य-दृश्य सामग्री की सहायता से बार-बार समझाने अथवा अधिक प्रोत्साहन एवं पुनर्बलन देने की आवश्यकता होगी।

प्रत्येक शिक्षार्थी के लिए एक अच्छे "ट्यूटर" की व्यवस्था से अत्यधिक लाभ की संभावना है। एक अप्रकाशित अध्ययन में यह देखा गया कि एक विद्यालय के एक तिहाई छात्रों को बीजगणित विषय में विद्यालय में प्राप्त कक्षा-शिक्षण के अतिरिक्त घर पर "ट्यूटर" द्वारा शिक्षण प्रदान किया गया। इन छात्रों ने गणित में ऊँचे ग्रेड प्राप्त किए और उनके गणित अभिरुचि परीक्षण के परिणाम और शैक्षिक उपलब्धि में कोई सह-संबंध नहीं मिला। इसके विपरीत जिन्हें 1"ट्यूटर" की सहायता नहीं मिली उनकी गणित अभिरुचि और शैक्षिक उपलब्धि में उच्च सह संबंध (–0.90) मिला। स्पष्ट है कि ट्यूटर द्वारा छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षण से छात्र अधिगम-विषय में अपेक्षित प्रगति कर सके।

अतः यदि शिक्षण प्रत्येक छात्र के लिए प्रभावी हो तभी उसे उत्तम कहा जायेगा। परन्तु चूँकि प्रत्येक छात्र के लिए पृथक शिक्षक की व्यवस्था नहीं की जा सकती इसलिए सामूहिक शिक्षण की योजना में शोध द्वारा ऐसे परिमार्जन अपेक्षित हैं जिससे प्रत्येक छात्र अधिगम स्तर प्राप्त कर सके।

शैक्षिक अनुदेश को समझने की योग्यता :

शैक्षिक अनुदेश को समझने की योग्यता में दो प्रकार की क्षमताएँ निहित हैं—अधिगम-विषय के स्वरूप को समझ सकना तथा उन अधिगम विधियों को समझ सकना जो उसे अपनानी हैं। छात्र यदि अध्यायकीय कथन, निर्देशों, प्रश्न आदि को समझ सके तथा पाठ्य-सामग्री को पढ़-समझ सके तो उसे अधिगम में सहज ही सफलता मिल सकती है। स्पष्ट है कि इसमें उसकी भाषा संबंधी योग्यता सहायक सिद्ध होगी। भाषा योग्यता तथा विभिन्न विषयों की उपलब्धि से जो सह संबंध (–'50–.60) पाया जाता है उससे यह प्रतीत होता है कि अध्यापकों तथा पाठ्य सामग्री से शिक्षण प्राप्त करने में भाषा योग्यता का व्यापक योगदान है।

---

1. ब्लूम, बी० एस० जे० टी० हेस्टिंगज तथा जी० एफ० मैडास: हैंडबुक आफ फार्मेटिव एण्ड समेटिव इवैलुएशन इन स्टूडेंट लर्निंग: मैक्ग्रा–हिल बुक कम्पनी, 1971 पी० पी० 47–48.

यहाँ यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि किसी व्यक्ति की भाषा संबंधी योग्यता का संवर्द्धन प्रारम्भिक स्तर पर ही अधिक संभव है। बाद के वर्षों में इस दिशा में परिवर्तन मन्द होता जाता है।

इस सीमा के परिप्रेक्ष्य में यह अपेक्षित है कि शिक्षण प्रविधियों को शिक्षार्थियों की आवश्यकता से समायोजित किया जाय। इसके लिए निम्नलिखित उपाय संभव है :-

टोली कार्य :-छोटी-छोटी टोलियों में छात्रों को अध्ययन कार्य का अवसर मिलना लाभप्रद होगा। टोली के छात्र (2-3 छात्र) एक दूसरे की कठिनाइयों का निवारण करने में सहायक होंगे। यह आवश्यक है कि टोली कार्य सहयोग की भावना से हो और टोली के सदस्य नियमित रूप से मिल कर कार्य करते रहें।

ट्यूटर की सहायता :-कुछ छात्रों को "ट्यूटर" की सहायता आवश्यक हो सकती है। ट्यूटर उनकी विशिष्ट कठिनाइयों को समझ कर उन्हें आवश्यक निर्देशन प्रदान करेगा। कक्षा अध्यापन के स्थान पर कोई अन्य शिक्षक "ट्यूटर" के रूप में कार्य करे तो अच्छा होगा ताकि शिक्षण में नयी दिशा आ सके।

वैकल्पिक पाठ्य-पुस्तकें :-पाठ्य-पुस्तकों में विषय-वस्तु के विवेचन की शैलियों में भिन्नता पायी जाती है। यदि छात्र एक पाठ्य पुस्तक से विषय बोध करने में कठिनाइयों का अनुभव करता हो तो उसे दूसरी पाठ्य पुस्तक अथवा विभिन्न पाठ्य पुस्तकों के विशिष्ट अंश पढ़ने के लिए दिये जा सकते हैं। इससे उसकी कठिनाइयों का निवारण होगा।

कार्य पुस्तिका :-कुछ छात्र कार्य पुस्तिकाओं में दिये गये अभ्यास करने में वांछित प्रगति कर सकते हैं। पाठ्य पुस्तक से जो प्रत्यय वे ग्रहण नहीं कर पाते उन्हें वे इस प्रकार के अभ्यास से सीख लेते हैं।

अभिक्रमायोजित (प्रोग्राम्ड) पाठ :-कुछ छात्रों के लिए अभिक्रमायोजित पाठ अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। इनमें छोटे-छोटे पदों और पुनर्बलन की योजना होती है। ऐसे पाठ विषय वस्तु के नियमित शिक्षण में उपयोग किये जा सकते हैं अथवा जिन स्थलों पर छात्र को कठिनाई का अनुभव हो वहाँ प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

श्रव्य-दृश्य सामग्री :-कुछ छात्रों को चित्र, ग्राफ, माडल, स्लाइड, फिल्म स्ट्रिप फिल्म आदि विविध श्रव्य दृश्य सामग्री की सहायता की अधिक आवश्यकता होगी। अतः उनके लिए ऐसी सामग्री का समुचित उपयोग करना होगा। सभी छात्रों के लिए केवल अमूर्त मानसिक शिक्षण पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। ध्यान देने योग्य प्रमुख बात यह है कि छात्रों की अनुदेश समझने की योग्यता के अनुरूप शिक्षण के गुणात्मक स्तर में सुधार किया जाय तो उनका अधिगम स्तर उच्च होगा।

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B,Sri Aurbindo Marg,New Delhi-110016
DOC. No.......4.8.5.7
Date.......8/2/85

अध्यवसाय : कैरोल की परिभाषा के अनुसार, शिक्षार्थी जितना समय अधिगम कार्य में लगाने के लिए तत्पर है वह अध्यवसाय है। किसी कार्य में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए किसी शिक्षार्थी को जितने समय की आवश्यकता है यदि वह उतना समय सक्रिय अधिगम में नहीं लगाता तो वह प्रवीणता नहीं प्राप्त कर सकेगा। इस प्रकार अध्यवसाय अधिगम-प्रवीणता के लिए एक उपयोगी घटक है। यह स्मरणीय है कि केवल अधिगम में समय देना नहीं, वरन् उस समय को सक्रिय रूप से अधिगम के लिए उपयोग करना महत्व की बात है।

अध्यवसाय छात्रों की सीखने के प्रति अभिवृत्ति और रुचि पर भी निर्भर करता है। छात्र की जिस कार्य या विषय में अधिक रुचि होगी उसमें वह अधिक लगन के साथ कार्य करेगा। इसी के साथ इसकी भी संभावना है कि अगर किसी कार्य में उसे पर्याप्त सफलता मिले तो उसमें उसकी रुचि बढ़ेगी और उसमें वह अधिक समय लगाने के लिए तत्पर होगा। अतः यदि ऐसी शिक्षण विधियाँ अपनायी जायें जिससे शिक्षार्थी को अधिगम में सफलता की अनुभूति हो तो वह उसमें अधिक अध्यवसाय प्रदर्शित करेगा और साथ ही इसकी भी संभावना बढ़ेगी कि वह कम समय में प्रवीणता प्राप्त कर ले।

अधिगम प्रवीणता के लिए कार्य-योजना :

उक्त घटकों के परिप्रेक्ष्य में अधिगम-प्रवीणता के लिए विविध कार्य योजनाएँ अपनायी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ, प्रत्येक छात्र के लिए एक अच्छे "ट्यूटर" की व्यवस्था एक आदर्श विधा हो सकती है परन्तु यह सामर्थ्य से परे है। छात्रों को स्वैच्छिक गति से अधिगम का अवसर देना, कक्षा-विभाजन रहित "नान ग्रेडेड" विद्यालयीय संगठन (गुडलैड एवं ऐण्डर्सन, 1959) छात्रों को अध्ययन विषय चुनने में सहायता, छात्रों को पृथक-पृथक पाठ्यक्रमीय धाराओं में बाँटना आदि कुछ उपयोगी विधायें हैं।

शिकागो विश्वविद्यालय में ब्लूम तथा उनके सहयोगियों के अनुसंधान कार्य में व्यवहृत कार्य-योजना के पद निम्नवत् हैं :–

1–पाठ्य-विषय को इकाइयों में विभाजित करना।

2–पाठ्य इकाइयों का विश्लेषण-विशिष्ट तथ्य, संकलपनायें, सिद्धान्त, जटिल प्रक्रियायें जैसे अनुप्रयोग, विश्लेषण संश्लेषण आदि।

3–निदानात्मक परीक्षण-शिक्षण के उपरान्त यह जानने के लिए कि विषय-इकाई में प्रवीणता प्राप्त हो गयी हैं अथवा कमी है।

4—वैकल्पिक अधिगम साधन—उन पक्षों में जहाँ शिक्षार्थी के अधिगम में त्रुटि अथवा कमी हो उसे दूर करने के लिए अन्य उपायों का प्रयोग किया जाना।

इस प्रकार की कार्य योजना अपनाने से इसकी अत्यधिक संभावना है कि प्रत्येक शिक्षार्थी अपने अधिगम विषय में वांछित प्रवीणता प्राप्त कर सकेगा। इसमें समाज और व्यक्ति दोनों का ही हित निहित है।

कक्षा शिक्षण में माडल टीचिंग एप्रोच

वाँछित शैक्षिक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु जो प्रक्रिया अपनायी जाती है उसे शिक्षण कहते हैं। शिक्षण-प्रभावकारिता का सीधा संबंध अध्यापक द्वारा दी जाने वाली गुणात्मक शिक्षा से है। यदि अध्यापक की शैक्षिक प्रक्रिया, शिक्षण संदर्भ, उद्देश्य, विषय-वस्तु की प्रकृति, शिक्षार्थी के स्वभाव आदि के अनुकूल है तथा स्वतः उसकी क्षमता से मेल खाती है, तभी शिक्षण कार्य सफल होगा। प्रश्न उठता हैं कि कौन सी विधा है जिसे अध्यापक अपनाये। शैक्षिक-प्रशिक्षण हेतु उपलब्ध साहित्यों की विहंगम दृष्टि से समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि कम से कम तीन ऐसी विधायें हैं जिनको प्रशिक्षण हेतु महत्वपूर्ण माना जा सकता है। यद्यपि बहुत समय से जेस्टाल्ट (Gectalt) द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधि को अपनाया गया है परन्तु विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान के विकास के साथ इसमें स्पष्ट रूप से परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गयी। अब टीचिंग माडल एप्रोच की महत्वपूर्ण माना जा रहा है क्योंकि शैक्षिक लक्ष्यों की पूर्ति तथा शिणार्थी की क्षमता दोनों के लिए यह विधा उपयोगी समझी जा रही है।

"A model of teaching is a set of inter related componants arranged in a sequence which provides guidelines to realize specific goal'.

शैक्षिक प्रक्रियाओं के निर्माण, वातावरण के सृजन तथा ऐच्छिक लक्ष्यों की पूर्ति में यह विधा अत्यन्त सहायक होती है। वर्तमान समय में शिक्षाविद, मनोवैज्ञानिक, समाज शास्त्रवेत्ता आदि ने यह पाया कि टीचिंग माडल एप्रोच एक ऐसी शक्तिशाली विधा है जो टीचिंग के उद्देश्यों तथा शिक्षार्थियों के सीखने के ढंग में सामंजस्य स्थापित करती है। यदि शिक्षक बहुत से माडल्स का निर्माण कर लें तो आवश्यकता एवं संदर्भानुसार उनका प्रयोग किया जा सकता है।

ब्रूस जैकी तथा मार्श वील (1980) ने विभिन्न माडल्स को उद्देश्यों पर आधारित करके निम्नवत सूची का निर्माण किया—

1–Information Processing Model.

2–Social Interaction Model.

3–Personal Development Model.

4–Behaviour Modification Model.

माडल मुख्य रूप से तीन प्रकार के हैं :–

1–एक्सपोजीटरी टीचिंग माडल

2–इन्क्वायरी टीचिंग माडल

3–मास्टरी लर्निंग माडल

I–एक्सपोजीटरी टीचिंग माडल :

इस प्रकार के माडल की सफलता के लिए शिक्षार्थी में स्पष्टीकरण, उदाहरण प्रस्तुतीकरण, पुनर्बलन तथा प्रश्न करने की क्षमताओं से होनी चाहिए। यदि इस प्रकार की क्षमता शिक्षार्थी में पहले से नहीं है तो अभ्यास द्वारा इन्हें पहले प्राप्त कर लिया जाय और तब माडल का प्रयोग किया जाय।

उद्देश्य – 1–माडल की सार्थकता बताना।

2–तकनीकी शब्दों का स्पष्टीकरण।

3–प्रक्रियाओं को सूचीबद्ध कर लिया जाय।

4–टीचिंग माडल डिजाइन को स्पष्ट किया जाय।

5–माडल के प्रयोग को समस्त कक्षा में प्रदर्शित किया जाय।

डेविड एसूबेल ने थ्यूरी आफ मीनिंगफुल लर्निंग में लिखा है कि The models Purport to equip the teacher to convey the information meaningfully as it is one of the good of schooling.

शिक्षक इस एप्रोच के अन्तर्गत भाषणकर्ता अथवा स्पष्टीकरण की भूमिका अदा करता है परन्तु भाषण में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि छात्र ज्ञान के तह तक पहुँच जाय। इस प्रकार शिक्षार्थी के ज्ञान को परिपुष्ट करने का लक्ष्य रहता है। इसके साथ ही शिक्षार्थी के पूर्व ज्ञान को स्थायी एवं सुस्पष्ट बनाया जाता है जिससे कि नये ज्ञान को

अच्छी तरह ग्रहण किया जा सके। इसके द्वारा ज्ञान प्राप्त करने और उसको बनाये रहने में सुविधा होती है। इस ज्ञान को छात्र आवश्यकता पड़ने पर अन्य कार्यों में उपयोग कर सकता है।

इस माडल का उदाहरण

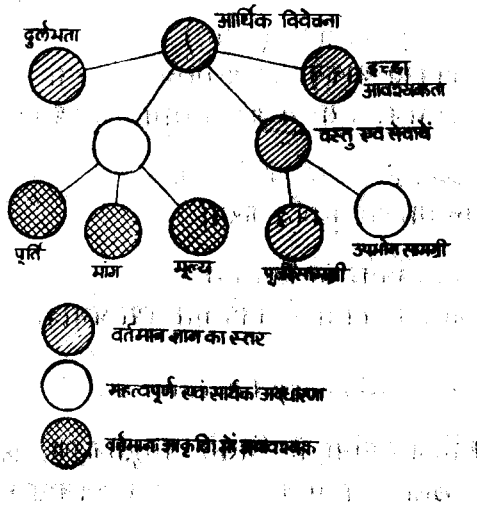

उपर्युक्त माडल में यह स्पष्ट किया गया है कि किसी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति की विवेचना के सम्बन्ध में इस प्रकार चिह्नित वृत्तों की संकल्पना या जानकारी छात्रों को पहले से है तथा बिना चिह्नित की संकल्पना की जानकारी आवश्यक है क्योंकि इसे छात्रों के पूर्व ज्ञान से संबंधित किया जा सकता है परन्तु इस आकृति की जानकारी छात्रों को नहीं है किन्तु जिसके बारे में सूचना प्रदान करके जानकारी दी जा सकती है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की जानकारी में परिवर्तन होता रहता है।

II–इनक्वायरी ट्रेनिंग माडल :

इस माडल का विकास सुचमैन Such Man ने किया। उन्होंने छात्रों में वैज्ञानिक जाँच की क्षमता का बच्चों में विकास करना चाहा था। इस माडल में छात्र पहले तथ्यों का संग्रह करते हैं, उनको व्यवस्थित करते हैं तथा इसके आधार पर सूत्रों का निर्माण किया जाता है और वैज्ञानिकों की तरह विभिन्न तथ्यों के आधार पर निर्णय लिया जाता है। इसमें निम्न स्थितियाँ होती हैं :—

प्रथम चरण — समस्या का प्रस्तुतीकरण
जाँच की विधाओं की जानकारी कराना
गहन समस्या का प्रस्तुतीकरण

चरण दो — आँकड़ों का संग्रह (जाँच)
वस्तुओं की प्रकृति तथा दशा जानना
समस्या की मूलभूत बातों में साम्य स्थापित करना

चरण तीन — आँकड़ों का संग्रह (प्रयोग)
उपयुक्त आँकड़ों को अलग-अलग करना
घटनाओं में साम्य अथवा सामंजस्य स्थापित करना

चरण चार — सूत्रबद्धता तथा स्पष्टीकरण
नियमों को सूत्रबद्ध करना

चरण पाँच — जाँच विधा की विवेचना
जाँच की विधा की विवेचना तथा प्रभावी तथ्यों को विकसित करना।

III—मास्टरी लर्निंग माडल Mastery Learning Model

यह एक ऐसी शिक्षण विधा है जिसमें प्रस्तुतीकरण, फ़ीडबैक तथा त्रुटियों के निवारण द्वारा सभी छात्रों को ऐच्छिक स्तर तक पहुँचाने का प्रयास किया जाता है।

This model provides opportniuties not only teacher pupil interaction but pupil interaction as well.

Sub. National Systems Unit
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B,SriAurbindo Marg,NewDelhi-11001
DOC. No. 4.8.5.7
Date 7/9/87

NIEPA DC
D04857